हो; ऐसी स्थिति में सॉफ्टवेयर उस निर्देश को यों समझेगा - 'अगला मौका मिलते ही दाएं मुड़ो'। इसके लिए रोबट में इंफ्रारेड सेंसर लगाए गए हैं जो आसपास की बाधाओं को पहचान जाते हैं।

जोस मिलन का यह उपकरण अभी परीक्षण के चरण में है मगर पूर्व के सारे प्रयासों से यह बेहतर लगता है। इससे पहले 1998 में एटलाण्टा (जॉर्जिया) के वैज्ञानिकों ने एक व्यक्ति के सिर के अंदर इलेक्ट्रोड्स लगाकर यह संभव कर दिखाया था कि सिर्फ विचार के द्वारा कम्प्यूटर के *कर्सर* को चलाया जा सकता है।

वैसे अभी मिलन के उपकरण में कई खामियां हैं। एक तो यह प्रतिक्रिया देने में बहुत समय लगाता है। दूसरी, अभी यह मात्र तीन पैटर्न पहचान सकता है। मगर यदि अंततः इस तरह की व्हीलचेयर बन पाई तो यह विकलांग लोगों को एक नया आत्मविश्वास देगी और इसके मनोवैज्ञानिक असर बहुत सकारात्मक होंगे। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***

कपास को रोपकर उपज बढ़ाएं

आजकल बीटी कपास के काफी चर्चे हैं और इसे उत्पादन बढ़ाने का एक तरीका बताया जा रहा है। मगर करन्ट साइन्स पत्रिका के 25 जुलाई 2003 के अंक में ए.डी. कर्वे ने सुझाया है कि यदि धान की तरह कपास का भी रोपा लगाया जाए तो उपज काफी बढ़ती है। महाराष्ट्र में किए गए प्रयोगों के आधार पर कर्वे का कहना है कि इस तरीके से कपास की उपज लगभग दुगनी की जा सकती है।

महाराष्ट्र में करीब 17 लाख हैक्टर ज़मीन में कपास की खेती होती है और इसमें से 98 फीसदी वर्षा-पोषित है। यद्यपि मानसून की शुरुआत 15 जून के आसपास होती है मगर किसान कपास बुवाई का काम इसके 1 माह बाद ही करते हैं क्योंकि मिट्टी में पर्याप्त नमी हो जाए तो अंकुरण ठीक से होता है। नतीजा यह होता है कि कपास की बुवाई 15 जुलाई के आसपास होती है। मानसून 15 सितम्बर के करीब विदा हो जाता है। तो होता यह है कि खेत में 6 माह खड़ी रहने वाली फसल को वर्षा का लाभ 2 महीने ही मिल पाता है। अंततः जब फल लगने व पकने का समय आता है तब सूखे की स्थिति होती है।

यह विचार किया गया कि यदि मई के महीने में कपास के बीज प्लास्टिक की थैलियों में बो दिए जाएं और जुलाई में उन्हें खेतों में रोपा जाए तो पूरे चार माह फसल को पानी मिलेगा। इसका एक और फायदा यह होगा कि वास्तविक बुवाई दो माह पहले (जुलाई की बजाय मई में) हो जाएगी। इससे लाभ यह है कि फसल जल्दी पक जाएगी और मानसून के अंतिम दौर में बढ़ने वाले कीटों से भी बच जाएगी।

पिछले तीन वर्षों से इस तरीके का प्रदर्शन किया जा रहा है। खेतों में प्रदर्शन के दौरान देखा गया है कि पौधों की ऊंचाई अच्छी हो जाती है, ज़्यादा शाखाएं निकलती हैं और ज़्यादा फल लगते हैं। जिन 20 प्लॉट्स में यह प्रयोग किया गया उनमें कपास की उपज 1513 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रही जबकि सीधे बीज बोने पर उपज 828 कि.ग्रा. ही रही।

यह सही है कि रोपने के तरीके में खर्च थोड़ा ज़्यादा होगा। कर्वे का अनुमान है कि प्लास्टिक की थैलियों, रोपाई में मज़दूरी वगैरह मिलाकर प्रति हैक्टर 500 रुपए का अतिरिक्त खर्च आएगा। यह भी हो सकता है कि कोई किसान रोपे तैयार करके बेचे। मगर इनकी कीमत 40-50 पैसे प्रति पौधा होगी जो बहुत ज़्यादा है। इसलिए उन्होंने यह भी प्रयास किया कि प्लास्टिक की थैलियों की बजाय क्यारियों में रोपे तैयार किए जाएं। मगर देखा गया कि ये रोपे उखाड़कर दूसरी जगह लगाए जाने पर नहीं पनपते। शायद इस पर और अनुसंधान की ज़रूरत है। शायद कपास की कोई ऐसी किस्म तैयार की जा सके जो एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह रोपने पर भी जीवित रहे। ***(स्रोत फीचर्स)***